For TDC Part-I & Sub.

भारतीय दर्शन (बौद्ध दर्शन- चार आर्य सत्य)

डॉ. विजय कुमार

भगवान बुद्ध उद्यान में विहार करते हुए एक दिन बूढ़े व्यक्ति, रोगी, मृत तथा संन्यासी को देखा। उन सबों को देख कर उनके मन में यह बात बैठ गई कि संसार या मानव जीवन दुःखमय है, सर्वत्र दुःख है। बुद्ध ने संसार की वास्तविकता को समझा और उसको सबके सामने व्यक्त ही नहीं किया बल्कि दुःख निवारण को ही उन्होंने अपने दर्शन का ध्येय बनाया। बुद्ध ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। उन्होंने सिर्फ दुःख से ही छुटकारा पाने की ही बातें की तथा तत्त्वमीमांसीय समस्यायों को निरर्थक मानकर छोड़ दिया तथा अन्य लोगों को भी यही राय दी कि ये विचारणीय नहीं है। जिन तत्त्वमीमांसीय समस्याओं को उन्होंने व्यक्त होने के लायक नहीं बताया, अव्यक्त कहा। वे इस प्रकार हैं-

१. क्या यह संसर शाश्वत है?

२. क्या यह संसार अशाश्वत है?

३. क्या यह संसार सान्त है?

४, क्या यह संसार अनन्त है?

५ क्या आत्मा और शरीर एक है?

६. क्या आत्मा शरीर से मिला है?

७. क्या मृत्यु के बाद फिर से जन्म होता है?

८. क्या मृत्यु के बाद फिर से जन्म नहीं होता है?

९. क्या मृत्यु के बाद होता भी है और नहीं भी होता है?

१०. क्या पुनर्जन्म होना और पुनर्जन्म नहीं होना दोनों गलत है?

भगवान बुद्ध के सामने मानव जीवन के दुःख दर्द को मिटाने की समस्या थी। अतः तत्त्वमीमांसीय प्रश्नों को उन्होंने महत्त्वहीन एवं अनुपयोगी माना। बुद्ध ने व्याकृत किया है जिसे आर्य सत्य के नाम से जानते हैं, वे इस प्रकार है-

१. सर्वदुःखम्- संसार दुःख से परिपूर्ण है।

२. दुःख समुदय- दुःख के कारण हैं।

३. दुःख निरोध- दुःख का नाश संभव है।

४. दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपत्- दुःख नाश के उपाय हैं।

मानव जीवन के दुःख निवारण के लिए बुद्ध ने इन चार आर्य सत्यों को प्रस्तुत किया। आर्यसत्य से अभिप्राय है वह सत्य जिसे आर्य लोग यानी ज्ञानी लोग, समझदार लोग समझते हैं। अनार्य लोग मानव जीवन की यथार्थता को नहीं समझ पाते हैं।

प्रथम आर्य सत्य - **सब दुःखमय है**- जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, पीड़ा, चिन्ता, परेशानी, चाही हुई वस्तु का प्राप्त न होना आदि सब दुःख है।

२. दुःख के कारण हैं- जब यह ज्ञात होता है कि दुःख है तो दुःख का कारण क्या है? क्योंकि सभी कार्य के कोई न कोई कारण होते ही हैं। बिना कारण के कार्य नहीं होता है। इस सम्बन्ध में बुद्ध ने एक शृंखला बताई है जिसमें बारह कड़ियाँ हैं। उसे भवचक्र या द्वादशनिदान कहते हैं। भवचक्र की बारह कड़ियाँ इस प्रकार हैं-

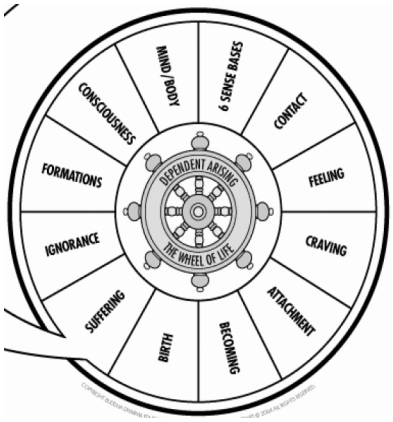

१. अविद्या (Ignorance) २. संस्कार (Inmpression) ३. विज्ञान (Consciousness) ४. नामरूप (Mind body organism) ५. षडायतन (Six Sense Organce) ६. स्पर्श (Sense Contact) ७. वेदना (Sense Experience) ८. तृष्णा (Craving) ९. उपादान (Mental Clinging) १०. भव (The will to be born) ११. जाति (Rebirth) १२. जरा-मरण (Suffering).

अविद्या ही सभी दुःखों का कारण है। ऊपर कथित दुःख की कड़ियों को भवचक्र कहते हैं क्योंकि इन्हीं के बीच संसार चक्रित होता रहता है। इनकी संख्या बारह है इसलिए इन्हें द्वादशनिदान कहते हैं। ये एक के बाद दूसरी उत्पन्न होती है इसलिए इन्हें प्रतीत्यसमुत्पाद भी कहते हैं। इनमें से अविद्या और संस्कार का सम्बन्ध पूर्वजन्म से है, जाति और जरा-मरण का सम्बन्ध भविष्य जन्म से है तथा शेष का सम्बन्ध वर्तमान जन्म से सम्बन्धित है।

३. दुःखों का नाश (दुःख निरोध)- कारण के नाश होने पर कार्य नाश हो ही जाता है। चूँकि बुद्ध ने दुःख के कारण को जान लिया था इसलिए वे यह मानते थे कि दुःख का नाश होता है जिसे निर्वाण कहते हैं। 'निर्वाण' का अर्थ होता है बुझ जाना, दुःखों का बुझ जाना या समाप्त हो जाना ही निर्वाण है। संसार अनित्य होने के नाते मिथ्या है निर्वाण नित्य और सत्य है। इसे ही मोक्ष या मुक्ति कहते हैं।

निर्वाण का अर्थ जीवन का समाप्त होना नहीं, बल्कि दुःख का समाप्त होना है। दुःख का बुझना निर्वाण होता है, जीवन का बुझना नहीं। जीवन के रहते हुए भी निर्वाण प्राप्त हो सकता है। इसलिए मुक्ति की दो स्थितियाँ बताई गई हैं- सदेहमुक्त तथा विदेहमुक्त। अज्ञान का नाश और ज्ञान की प्राप्ति ही तो निर्वाण है और इसकी प्राप्ति जीवन काल में ही होती है। बुद्ध ने अपने जीवन काल में ही बोधि प्राप्त की थी। सदेहमुक्त व्यक्ति जब शरीर छोड़ देता है तब वह मुक्त हो जाता है। वह पूर्ण मोक्ष या पूर्ण निर्वाण की स्थिति होती है।

दुःख नाश के उपाय

बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति के जो मार्ग निरूपित किया है उसके आठ स्तर हैं। इन आठ में एक के बाद दूसरा आता है। वे आठ अंग हैं-

सम्यक्-दृष्टि- व्यक्ति अविद्या से प्रभावित रहता है जिसके कारण वह संसार को सत्य तथा आत्मा को अमर समझता है। यह दृष्टि मिथ्यादृष्टि है। अतः व्यक्ति को संसार और आत्मा के विषय में सही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उसे ही सम्यक्-दृष्टि कहते हैं।

सम्यक्-संकल्प- सम्यक्-दृष्टि का बोध हो जाने मात्र से ही दुःख का निवारण नहीं होता है। उसके लिए चाहिए कि साधक सम्यक्-दृष्टि के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए संकल्पित हो। वह राग-द्वेष से अपने को बचाने का प्रयास करे।

सम्यक्-वाक्- मानसिक रूप से सन्मार्ग पर चलने के लिए तैयार होने के बाद वह मिथ्या वचन न बोले, किसी की निन्दा न करे, किसी के प्रति कटुवचन का व्यवहार न करे।

सम्यक्-कर्मान्त- संकल्प का पालन कर्मों के द्वारा भी होना चाहिए। साधक मन, वचन और कर्म से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सदाचारों का पालन करे।

सम्यक्–आजीव– उचित वचन बोलते हुए तथा उचित कर्मों को करते हुए साधक न्यायपूर्ण ढंग से जीवोपार्जन करे। गलत ढंग से जीविका न अर्जित करे।

सम्यक्–व्यायाम– व्यायाम से साधारण अर्थ शारीरिक व्यायाम से लिया जाता है। किन्तु बौद्ध चिन्तन में इसका कुछ अलग ही अर्थ है। सम्यक्–दृष्टि आदि के होते हुए भी यह आशंका बनी रहती है कि साधक साधना पथ से विचलित न हो जाए। अतः उसे कहा जाता है कि निम्नलिखित व्यायाम करे–

क. मन में आए पुराने भावों को समाप्त करने की कोशिश करे।

ख. यह चेष्टा करे कि उसके मन में नए कोई बुरे भाव न आवें।

ग. अपने मन को साधक हमेशा अच्छी बातों से परिपूर्ण रखे।

घ. मन में जो अच्छे भाव आ गए हैं उन्हें प्रतिष्ठित करे, उन्हें मन से बाहर न जाने दे।

सम्यक्–स्मृति– सम्यक्–दृष्टि सम्यक्–संकल्प, सम्यक्–वाक्, सम्यक्–कर्मान्त आदि के कारण व्यक्ति को संसार की नश्वरता का बोध हो जाता है। किन्तु वह उसे भूल भी जाता है और पुनः राग–द्वेष से प्रभावित हो जाता है। जब वह किसी मृत को देखता है तो उसके मन में विराग हो जाता है किन्तु कुछ समय बाद और सांसारिक मोह–ममता में फंस जाता है। अतः उसे हमेशा याद रखना चाहिए कि जिस शरीर से हम इतना प्यार करते हैं वह तो क्षिति, जल, अग्नि, वायु से निर्मित है। उसमें हड्डी, मांस, त्वचा, अंतड़ी, विष्टा, पित्त, कफ़, लहू, पीव आदि घृणित वस्तुओं के सिवा और कुछ नहीं है। मृत शरीर को जलते हुए देखने से यह प्रमाणित हो जाता है। अतः साधक जब इस बात पर ध्यान देता है तो उसे न अपने प्रति और न सगे–सम्बन्धियों के प्रति मोह उत्पन्न होता है।

सम्यक्–समाधि– उपर्युक्त नियमों से साधक का मन शुद्ध हो जाता है और वह अपने में एकाग्रता लाकर समाधि में लीन होता है। बौद्ध मत में समाधि की चार अवस्थाएँ हैं–

क. आर्य सत्यों के विषय में विचार करते हुए, अपूर्व आनन्द एवं शान्ति का अनुभव करना।

ख. आर्य सत्यों के प्रति किए गए वितर्क का नाश तथा उनके प्रति श्रद्धा।

ग. इस अवस्था में साधक आनन्द और शान्ति के प्रति उदासीन हो जाता है। उसमें दैहिक विश्राम के भाव के साथ ही साम्य भाव भी आता है।

घ. इसे साम्यावस्था कहते हैं। इसके आनन्द, विश्राम, सुख–दुःख किसी का भी बोध नहीं रह जाता है। यहाँ किसी के प्रति राग भी नहीं रह जाता है। यह अवस्था दुःख पूर्णतः नाश होने की है।

●